जनसत्ता

13 जून, 2019

उम्मीद का नल

आजादी के सात दशक बाद भी देश के बयासी फीसद गांव नल के लिए तरस रहे हैं। हालत यह है कि इन गांवों में पानी के लिए लोग आज भी पारंपरिक स्रोतों पर ही निर्भर हैं। ऐसा नहीं है कि गांवों में पानी पहुंचाने के लिए कभी योजनाएं नहीं बनीं। सरकारों में बैठे कर्णधार इस समस्या के बारे में अच्छी तरह जानते हैं, चर्चाएं चलती रहीं, योजनाएं भी बनती रहीं, इस मद के लिए धन का आबंटन भी होता गया, लेकिन जो काम होना था वही नहीं हुआ- इन योजनाओं पर ईमानदारी से अमल। हकीकत यह है कि ऐसी योजनाएं फाइलों में ही चलती रहीं। लोगों को पानी मिलने लगे, यह किसी भी सरकार की प्राथमिकता में नहीं रहा। जनप्रतिनिधि भी जानते हैं कि उनके निर्वाचन क्षेत्रों में जलापूर्ति की कोई व्यवस्था नहीं है। ऐसे गांवों की तादाद काफी बड़ी है जहां लोगों को पानी लेने के लिए मीलों दूर जाना पड़ता है, खासतौर से उन इलाकों में जहां जलस्रोतों का अभाव है। इससे सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि ग्रामीण इलाकों में जलापूर्ति की हालत क्या होगी।

लेकिन अब उम्मीद की जानी चाहिए कि तस्वीर कुछ बदलेगी। केंद्र सरकार ने अगले पांच साल में हर गांव के हर घर में नल से जल पहुंचाने की परियोजना को पूरा करने की बात कही है। अगर इस पर अमल होता है और कामयाबी हासिल हो जाती है तो यह उपलब्धि गांवों के लिए बड़ा वरदान साबित हो सकती है। इसके लिए राज्यों को भी बराबर की दिलचस्पी और ईमानदारी दिखानी होगी। हालांकि हर गांव के हर घर में नल के जरिए पानी पहुंचाना आसान नहीं है। इसमें कई तरह की भौगोलिक, तकनीकी, आर्थिक व संसाधन संबंधी बाधाएं आएंगी। लेकिन सरकारें इस काम को पूरा करने के लिए ठान लें तो असंभव भी नहीं है। भारत के ही राज्य सिक्किम ने ऐसा कर भी दिखाया है। सिक्किम के निन्यानबे फीसद घरों में पानी की सप्लाई नलों के जरिए की जाती है। ऐसी कामयाबी हासिल कर लेने वाला सिक्किम देश का पहला और एकमात्र राज्य है। दूसरी ओर महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और बिहार, जो मिल कर उत्तर भारत का बड़ा हिस्सा बनाते हैं, इस मामले में आज तक कोई तरक्की नहीं कर पाए। गांवों की तो बात दूर, ज्यादातर शहरों में जलापूर्ति व्यवस्था संतोषजनक नहीं है। ऐसे में हर गांव के हर घर में नल के जरिए पानी पहुंचाने का अभियान चुनौतीभरा होगा।

देश में उत्तर प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, ओड़िशा, पश्चिम बंगाल ऐसे राज्य हैं जिनके मात्र पांच फीसद ग्रामीण इलाकों में ही नलों के जरिए पीने के पानी की आपूर्ति की जाती है। हालांकि पानी की गुणवत्ता के सवाल पर तो किसी का ध्यान ही नहीं है। दक्षिण के राज्यों में कमोबेश ऐसी ही हालत है। देश के अन्य पहाड़ी राज्यों और रेगिस्तानी भू-भाग में पड़ने वाले ज्यादातर गांव ऐसे हैं जहां जलस्रोत ही नहीं हैं। मोटा अनुमान बता रहा है कि उत्तर प्रदेश जैसे राज्य में ही हर गांव के हर घर में नल से पानी पहुंचाने की परियोजना पर करीब सवा लाख करोड़ रुपए का खर्च आएगा। अब तक का अनुभव यह बताता है कि ऐसी परियोजनाएं पूरी होने में खासा वक्त लगता है और इनकी लागत भी बढ़ती जाती है। दूसरी बड़ी बाधा यह है कि इस तरह के महाअभियान में भ्रष्टाचार भी काफी होता है जो काम भी पूरा नहीं होने देता और लागत भी बढ़ाता जाता है। भारत में बुनियादी समस्या यही है। वरना जो मिसाल सिक्किम ने पेश की, क्या दूसरे राज्य वैसा नहीं कर सकते!

पहाड़ पर भीड़

गरमी की छुट्टियों में घूमने-फिरने को लेकर पहाड़ लोगों की पहली पसंद होते हैं। जिन पहाड़ों तक चौड़ी सड़कें बन गई हैं, वहां ज्यादातर लोग अपने वाहन से परिवार समेत जाना अधिक पसंद करने लगे हैं। हमारे यहां कुछ ही पहाड़ी इलाके ऐसे हैं, जहां अधिकतर लोग जाते हैं। उनमें उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश के पर्यटन स्थल प्रमुख हैं। ये स्थान चूंकि दिल्ली और उससे सटे शहरों, चंडीगढ़ आदि से नजदीक हैं, इसलिए यहां से अधिकतर लोग अपने वाहनों में जाते हैं। इन दिनों कश्मीर अशांत है, इसलिए वहां जाने वाले सैलानी भी इन्हीं क्षेत्रों का रुख करने लगे हैं। इसी का नतीजा है कि इन दिनों उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश के पर्यटन स्थलों पर वाहनों का भारी जमावड़ा हो गया है। लोग दो-दो दिन से भीड़ में फंसे हुए हैं। उत्तराखंड में चूंकि चार धाम यात्रा भी शुरू हो चुकी है, इसलिए छुट्टियों में सैर-सपाटे के लिए निकलने वालों के अलावा बदरी, केदार जाने वाले श्रद्धालुओं का भी खासा भारी जत्था उधर का रुख किए हुए है। उत्तराखंड सरकार का कहना है कि पिछले साल की तुलना में इस साल करीब ढाई गुना श्रद्धालु वहां पहुंचे हैं, जिसका उसे अनुमान नहीं था। इसी तरह हिमाचल प्रदेश की मनाली घाटी में करीब एक लाख सैलानी और बीस हजार वाहन रोज प्रवेश कर रहे हैं।

पहाड़ी जगहों पर भीड़भाड़ के चलते वाहनों की गति थम जाने की कुछ वजहें साफ हैं। एक तो पहाड़ी रास्ते उस तरह चौड़े नहीं होते, जैसे मैदानी भागों में होते हैं। दो कतार बना कर लोगों को चलना पड़ता है, जिसमें एक जाने वालों की होती है और दूसरी आने वालों की। मगर मैदानी भागों और बड़े शहरों से जाने वाले सैलानियों को इस बात का इल्म नहीं होता। वे जहां भी खाली जगह देखते हैं, आगे निकलने की जल्दी में गाड़ी बढ़ा देते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि वहां गाड़ियां फंस जाती हैं। इसके अलावा पहाड़ों पर बड़े पैमाने पर गाड़ियां खड़ी करने की जगहें नहीं होती हैं। इसलिए लोग वाहन खड़ा करने के लिए जगहें न मिल पाने के कारण सड़कों के किनारे ठहरे रहते हैं और दूसरे वाहनों के आगे बढ़ने का रास्ता अवरुद्ध कर देते हैं। उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश में सड़कों पर दूर-दूर तक वाहनों की भीड़ जमा होने का यही बड़ा कारण है। इस समस्या से पार पाने में वहां के प्रशासन का दम फूल रहा है। उसने ऊपर जाने वाले वाहनों को काफी दूर पहले मैदानी हिस्सों में ही रोकना शुरू कर दिया है। पर इससे पर्यटकों की परेशानियां कम नहीं हो पा रहीं।

हिमाचल और उत्तराखंड में सड़क मार्ग ही पहुंचने का मुख्य जरिया है। शिमला को छोड़ दें, तो वहां न तो रेल मार्ग है और न कारगर हवाई मार्ग, इसलिए भी लोग अपने वाहन का उपयोग करना बेहतर समझते हैं। प्रशासन इन कठिनाइयों से अनजान नहीं है। अगर वह पहले ही सतर्क रहता और आने वाले सैलानियों की संख्या का अधिकतम अनुमान लगा लेता, उस हिसाब से एहतियाती उपायों पर मुस्तैदी बरतता, तो यह समस्या न आने पाती। अगर बाहर से आने वाले वाहनों के लिए कुछ-कुछ दूरी पर ठहराव बनाए जाते और वहां से स्थानीय परिवहन की समुचित व्यवस्था कर दी जाती, तो परिवहन व्यवस्था को सुगम बनाया जा सकता था। मगर प्रशासन की फितरत है कि वह तब तक हाथ पर हाथ धरे बैठा रहता है, जब तक कि समस्या गंभीर नहीं हो जाती।

कल्पमेधा

नरक में सबसे खराब जगह उन लोगों के लिए सुरक्षित है जो नैतिक संकट के दौर में तटस्थ रहते हैं।
-दांते

सूखे का मंडराता खतरा

सुविज्ञा जैन

उत्तर प्रदेश-मध्यप्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र और महाराष्ट्र, गुजरात के कई जिलों में हाहाकार मचा है। जबकि पिछले मानसून की समाप्ति के दिन दावा किया गया था कि देश में बारिश सामान्य हुई है। सरकारी दावा यह भी था कि पिछली बारिश के पानी को हमने बांधों में पर्याप्त मात्रा में जमा करके रख लिया है। फिर भी आधा देश सूखे की चपेट में आ गया।

देश पर सूखे का साया मंडरा रहा है। यह आशंका सिर्फ इस वजह से नहीं है कि मानसून देर से आया या अल नीनो के असर से पानी कम गिरने का अंदेशा है, बल्कि पिछले साल का कटु अनुभव हमारे सामने है। पिछला मानसून सामान्य रहने के बाद भी इस साल देश का लगभग आधा हिस्सा सूखे की चपेट में है। आखिर ऐसा क्योंकर हुआ? सरकारी जवाब में इसका कारण आसमानी बताया जाता है। लेकिन पड़ताल की जाए तो पता चलेगा कि मसला कुछ और है। इसे प्रबंधन प्रौद्योगिकी के नजरिए से बेहतर समझ सकते हैं। कुदरत पूरी दुनिया की जमीन पर जितना पानी बरसाती है उसका चार फीसद भारत को देती है। जबकि भारत का क्षेत्रफल दुनिया की पूरी जमीन का सिर्फ ढाई फीसद है। यानी कुदरत बाकी दुनिया की तुलना में हमें कोई पौने दो गुना ज्यादा पानी देती है। इस लिहाज से हम जल संपन्न हैं। लेकिन भारत की आबादी दुनिया की कुल आबादी की सत्रह फीसद है। इसीलिए बाकी दुनिया की तुलना में प्रकृति से प्रतिव्यक्ति पानी की उपलब्धता एक चौथाई रहने लगी है। लेकिन इतना पानी भी कोई कम नहीं है। दूसरे कई देश बहुत ज्यादा जल विपन्न हैं। पर उनका जल प्रबंधन पुख्ता है। इसीलिए वे लगातार दो-तीन साल तक कम बारिश के बावजूद सूखे या अकाल से बचे रहते हैं। दरअसल, उन्होंने जल भंडारण के लिए प्रचुर बांध और जलाशय बना लिए हैं।

सरकारी आंकड़ों के मुताबिक सदियों से हमें औसतन चार हजार अरब घनमीटर पानी हर साल बारिश से मिलता है। इस समय हमारी आबादी एक सौ छत्तीस करोड़ है। यानी भारत में वर्षा से प्रति व्यक्ति सालाना करीब तीन हजार घनमीटर पानी अभी भी मिल रहा है। अंतरराष्ट्रीय पैमाने के मुताबिक सालाना प्रतिव्यक्ति दो हजार घनमीटर पानी की जरूरत होती है। इस लिहाज से तो हम प्रकृति से आज भी डेढ़ गुना ज्यादा पानी पा रहे हैं। इसलिए सवाल उठता है कि फिर भी जल संकट क्यों है? सरकारी विशेषज्ञ बताते हैं कि जो पानी हमें वर्षा के रूप में मिलता है वह पूरा का पूरा हम इस्तेमाल नहीं कर सकते। इसका कारण देश की भू-आकृति है। और फिर हिसाब लगा कर बताया जाता है कि चार हजार अरब घनमीटर पानी में से हम सिर्फ ग्यारह सौ अरब घनमीटर पानी इस्तेमाल कर सकते हैं। यह सरकारी आंकड़ा सनसनीखेज है।

देश में इस्तेमाल हो सकने लायक पानी की यह मात्रा देश में प्रतिव्यक्ति पानी की जरूरत से कमोबेश आधी ही है। सरकारी विशेषज्ञों का दावा है कि देश में सतही जल सिर्फ छह सौ चौरासी अरब घनमीटर और भूजल चार सौ तेईस अरब घनमीटर उपलब्ध है। इन्हीं दोनों मदों को जोड़ कर कुल उपलब्ध पानी का आंकड़ा 1107 अरब घनमीटर का निकला है। दो हजार घनमीटर प्रतिव्यक्ति के हिसाब से हमें एक सौ छत्तीस करोड़ लोगों के लिए इस समय 2720 अरब घनमीटर पानी चाहिए। जबकि देश में इस्तेमाल के लिए उपलब्ध पानी की मात्रा 1107 अरब घनमीटर बताई जा रही है। यह न्यूनतम जरूरत से आधी से भी कम है। इससे भी सनसनीखेज तथ्य यह है कि इस 1107 अरब घनमीटर उपलब्ध पानी को भी पूरा का पूरा इस्तेमाल करने का इंतजाम इस समय देश के पास नहीं है।

अब रही सूखे की समस्या से निपटने की बात। दरअसल, सूखे और बाढ़ को हमने प्राकृतिक आपदा मान रखा है। इसके लिए आपदा प्रबंधन का एक अलग से अकादमिक विषय भी बन गया है। लेकिन इस मामले में अनुभव यही है कि दोनों आपदाओं के लिए हमारे पास राहत के काम के अलावा करने को ज्यादा कुछ है नहीं। आगे वाकई कुछ करना हो तो सूखे के बारे में अब तक के ज्ञान को दोहराना जरूरी है। सूखे के मुख्य चार प्रकार हैं। मिटीरियोलॉजिकल यानी मौसमी सूखा, हाइड्रोलॉजिकल यानी जलविज्ञानी सूखा, एग्रीकल्चरल यानी कृषि सूखा और सोशियो-इकोनॉमिक यानी सामाजिक-आर्थिक सूखा। मौसमी सूखे के मायने ये हैं कि जब बारिश औसत से पच्चीस फीसद या उससे कम हो। इसके भी दो प्रकार हैं। एक, जब पच्चीस से पचास फीसद तक कम हो और दूसरा, जब पचास फीसद से भी कम हो जिसे भयावह आपदा कहा जाता है।

इस बार के बारिश के अनुमानों में भयावह हालात का अंदेशा तो अभी नहीं जताया गया है लेकिन सरकारी और गैर-सरकारी एजंसियों ने ऐसे अंदेशे को खारिज भी नहीं किया है। लेकिन यह अनुभव हमारे पास है कि अगर इस बार मौसमी सूखा नहीं भी पड़ा तो दूसरे प्रकार का सूखा यानी जलविज्ञानी सूखा पड़ने का अंदेशा जरूर है। यह सूखा उस हालत में भी पड़ता है जब मौसमी बारिश तो सामान्य हुई हो, लेकिन बारिश के पानी को हम आगे के लिए जमा करके न रख पाए हों। इस बार यही आशंका सबसे ज्यादा है। यह आशंका इस आधार पर है कि पिछले कुछ साल से बार-बार सूखे के हालात बनने लगे हैं। गौरतलब है कि बारिश के लिहाज से छत्तीस उपखंडों में बांटे गए देश में एक जैसी बारिश नहीं होती। हर साल बहुत से उपखंड सूखे की चपेट में आ जाते हैं। जबकि देश में औसत बारिश का आंकड़ा सामान्य दिखता है।

कृषि सूखा वह परिस्थिति होती है जिसमें अगर मौसमी और जलविज्ञानी सूखा न भी पड़े तब भी कृषि सूखा पड़ता है, खासतौर पर तब जब हमने बरसाती पानी का भंडारण पर्याप्त मात्रा में करके न रखा हो। हम इसी दशा के शिकार हैं। हाल का उदाहरण देखें तो इस साल पिछले महीने तक देश के बांध लगभग रीत गए थे। उत्तर प्रदेश-मध्यप्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र और महाराष्ट्र, गुजरात के कई जिलों में हाहाकार मचा है। जबकि पिछले मानसून की समाप्ति के दिन दावा किया गया था कि देश में बारिश सामान्य हुई है। सरकारी दावा यह भी था कि पिछली बारिश के पानी को हमने बांधों में पर्याप्त मात्रा में जमा करके रख लिया है। फिर भी आधा देश सूखे की चपेट में आ गया। इससे साबित होता है कि मौसमी और जलविज्ञानी सूखा नहीं पड़ने के बावजूद कृषि सूखे के हालात बन गए। पेशेवर भाषा में इसे प्रबंधन की नाकामी कहते हैं।

सामाजिक-आर्थिक सूखा वह विकट स्थिति होती है जब पानी उपलब्ध भी हो, लेकिन खेतों तक न पहुंचाया जा सके। गौरतलब है कि इस समय देश की कुल खेती की जमीन में आधी जमीन पर सिंचाई की सुविधा नहीं है। वर्षा आधारित खेती वाले किसान बहुत कुछ बारिश पर निर्भर होते हैं और भारी खर्चा करके जमीन के भीतर का पानी उलीचते हैं। सबको पता है कि सतही जल का प्रबंधन न होने के कारण भूजल स्तर गिरने की क्या हालत होती जा रही है। ये ज्यादातर किसान छोटी-छोटी जोत वाले हैं। वे अपने गुजारे लायक आमदनी भी मुश्किल से कर पा रहे हैं। मौसम की जरा सी ऊंच-नीच को हम सूखा भले न कहें, लेकिन गैर-सिंचित खेती करने वाले किसानों के लिए तो वह जीवन-मरण का सवाल होता है। कर्जा ले-लेकर निजी तौर पर पानी का इंतजाम करने वाले इन किसानों के पास खेती से या जीवन से पलायन करने के अलावा कोई और विकल्प बचा नहीं दिख रहा है।

हमारा जल प्रबंधन कच्चा है। हम बारिश का बहुत ही कम पानी बांधों में रोक कर रख पा रहे हैं। हालांकि इस मजबूरी के लिए कोई खर्च का तर्क दे सकता है। लेकिन पिछले सत्तर साल में बढ़ते-बढ़ते हम दो सौ लाख करोड़ की अर्थव्यवस्था बन गए हैं। लिहाजा, जल प्रबंधन पर खर्च का भी तर्क कच्चा है। जिस तरह से आजादी के बाद के तीन दशकों में जल प्रबंधन का काम हुआ था वैसा काम फिर से शुरू करने के अलावा कोई तरीका फिलहाल तो किसी के पास नहीं दिखता।

आदतों का कचरा

संतोष उत्सुक

दुनिया मेरे आगे

कुदरत की हर रचना खूबसूरत है। इसका काफी कुछ खुद बिगाड़ने के बाद भी हम लगातार इसकी अनदेखी किए जा रहे हैं। अपनी लापरवाही, स्वार्थ और विकास के साथ बढ़ती दोस्ती के कारण उतना ध्यान नहीं देते कि प्रकृति के आंगन में बढ़ती गंदगी साफ होती रहे। किसी से भी प्रेरणा लेना अब हमें नहीं भाता। पॉलीथिन और प्लास्टिक का प्रयोग कानूनन बंद है। व्यक्तिगत, राजनीतिक, सामाजिक संस्थाओं, जुलूसों, बैठकों और सरकार द्वारा किए गए प्रयासों का फर्क पड़ा है, लेकिन अगर गाड़ी और पद से उतर कर सचमुच पैदल चल कर संजीदा दिमाग और वाकई खुली आंखों से देखा जाए तो तस्वीर उजली नहीं है। सामने के अनेक डरावने चित्र खींचे जा सकते हैं।

पिछले दिनों पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड के कई क्षेत्रों में जाना हुआ। हरे और नीले बॉक्स लगे हुए पुराने लेटर-बाक्स की याद दिलाते हैं। मगर जैसे अब हम पत्र लिखना पसंद नहीं करते, उसी तरह इन डिब्बों में अभी भी कूड़ा-कचरा डालना पसंद नहीं करते। लोग यहां-वहां कूड़ा-कचरा फेंकते दिखते हैं। नालियों में कचरा फंसा है और उसमें पानी की कमी के कारण बदबू फैलती रहती है। पर्यटक अभी भी बीयर, पानी, कोल्ड ड्रिंक की बोतल, नैपकिन और फल वगैरह चलती कार से बाहर फेंकते दिखे। कूड़ा निष्पादन के बारे में अज्ञान तो नहीं है, घोर लापरवाही है। कहीं दुकान के बाहर गत्ते का डिब्बा रखा है, पॉलीथिन कोने में पड़े हैं। उखड़ी हुई सड़कों के आसपास टूटे पत्थर, मिट्टी के ढेर, लकड़ी के टुकड़े, बोतलें, उड़ते पॉलीथिन पेड़ों पर लटके, यहां-वहां पड़े हैं। एक जगह पर दो दिन लगातार देखा कि कचरा पेटी में आग लगा कर निबटाया जा रहा है। अनेक डंपरों के पास भी कबाड़ फैला हुआ है। कितनी जगह देखा कि नीले और हरे बॉक्स नए और साफ-सुथरे खड़े हैं। इनमें कचरा डालेंगे तो ये गंदे हो जाएंगे, शायद समझदार नागरिक ऐसा नहीं करना चाहते।

ऐसा लगता है कि हमें अपनी बिगड़ी हुई सांस्कृतिक आदतों से प्यार है। पॉलीथिन और प्लास्टिक से लगाव का कारण समझना मुश्किल है। कहीं चाय के लिए रुकें तो ढाबे और रेस्टोरेंट वाले अपना सब तरह का कूड़ा अपने ही आस-पड़ोस में या बहती नदी पर बने पुल के पास फेंक रहे हैं। बेचारी नदी की जिम्मेदारी तो कब से इसे अपने साथ बहा ले जाने की मान ली गई है। पत्थरों के बीच बहते पानी में पॉली लिफाफों में भरा घरेलू कचरा, लकड़ी के टुकड़े, कपड़े, पॉलीथिन, प्लास्टिक और लोहा, यहां तक कि पुराने टीवी के कैबिनेट तक फंसे हैं। कई बाजारों में घुसते ही नाक दबानी पड़ती है। इतनी बदबू है कि मन करता है कि वहां जाकर प्रशासन से सवाल करना चाहिए।

कूड़े-कचरे और कबाड़ को हटाने के लिए महज आश्वासन नहीं, इंसानी प्रयास और दृढ़ इच्छा शक्ति चाहिए। लेकिन इस मसले पर अभी तक हमारे दिमाग में कचरा भरा हुआ है। कितनी बार शैलेंद्र का लिखा गीत जुबान पर आता है- 'दुनिया बनाने वाले क्या तेरे मन में समाई... काहे को दुनिया बनाई'। फेसबुक पर यह लिख भर देने से क्या हम सचमुच समस्या का सामना कर लेते हैं? मीडिया में कितनी बार फोटो के साथ खबरें छपती हैं, मगर प्रशासन की दूसरी प्राथमिकताएं रहती हैं। ऐसे में अनगिनत जगह लिखे क्षेत्र को साफ-सुथरा रखने के विज्ञापन महज पैसा कमाने का पर्याय लगते हैं।

अधिकतर बाजारों, गलियों, किनारों, कोनों, नालों और नालियों में गंदगी और उसकी सड़ांध पसरी हुई हैं। पुरानी और नई इमारत का कबाड़ रिहाइशी क्षेत्र से बाहर फेंक दिया जाता है। वहीं कहीं यह बोर्ड भी लगा होता है कि 'यहां कूड़ा-कचरा फेंकने पर जुर्माना लगाया जाएगा।' लेकिन जुर्माना कौन करेगा और किस पर? प्रसिद्ध धार्मिक स्थलों पर बड़े ओहदेदार मंत्री और संतरी स्वार्थ साधने, पूजापाठ कराने आते हैं। लेकिन उनके पास सामाजिक कामों के लिए वक्त नहीं रहता। हरिद्वार जैसे प्रसिद्ध तीर्थ पर देखा गया कि लोग 'हर की पैड़ी' के पास नहा कर बच्चों के डायपर तक वहीं फेंक जाते हैं। कुछ कदम पीछे ही पुल के नीचे पानी में फैली गाद, प्लास्टिक बोतलें, पुरानी मूर्तियां, पुराने कपड़े और कचरा गंगा का हिस्सा है। पार्किंग स्थल पर भी पानी की तरह फैला है कूड़ा। प्रसिद्ध तीर्थ पेहवा का हाल भी अलग नहीं है। यहां पुलों के नीचे कचरा शान से पसरा हुआ है।

क्या यह सब हमारी बिगड़ी हुई आदतों का कचरा नहीं है जो हमारे जीवन का अभिन्न हिस्सा हो चुका है? कबाड़ हटाने की आदत उगाने के लिए एक सख्त अनुशासन लागू करना ही होगा। हमारे यहां राजनीति चाहे तो कुछ भी करवा सकती है। क्षेत्र के प्रभावोत्पादक व्यक्ति, कर्मठ अध्यापक और अधिकारी, संजीदा पंचायत सदस्य और मेहनती निस्वार्थी पार्षद अगर यह जिम्मेदारी संभाल कर नागरिकों को कूड़ा-कचरा सही तरीके से ठिकाने लगाने का अच्छी तरह अभ्यास करवा दें तो पुराना मुहावरा 'करत-करत अभ्यास ते जड़मति होत सुजान' फिर करामात दिखा सकता है।

रोजगार की खातिर

हालिया आम चुनाव में राजनीतिक दलों ने बेरोजगारी को प्रमुखता से मुद्दा बनाया था। जिस तरह बेरोजगारी के आंकड़े सामने आ रहे हैं, वे वास्तव में चिंताजनक हैं। केंद्र सरकार ने सातवें आर्थिक सर्वेक्षण की तैयारी लगभग पूरी कर ली है और इसके लिए देशभर में प्रशिक्षण का काम जारी है। ऐसा अनुमान है कि अगले छह माह में देश में समग्र आर्थिक सर्वेक्षण का काम पूरा कर लिया जाएगा। दरअसल, केंद्र सरकार ने इस सर्वेक्षण में रोजगार के आंकड़े जुटाने का खास निर्णय लिया है। चाय-पानी की रेहड़ी से लेकर पटरी पर बैठने वालों तक को इस सर्वेक्षण के दायरे में लाने का निर्णय लिया गया है। इसमें करीब सत्ताईस करोड़ परिवारों को शामिल किया जाएगा। इसके साथ ही सात करोड़ स्थापित लोगों को भी इस दायरे में लाने का फैसला किया गया है। यह भी तय किया गया है कि सरकार अब इस तरह के सर्वेक्षण हर तीसरे साल कराएगी।

रोजगार के मामले में चाहे किसी भी दल की सरकार हो, विपक्ष के निशाने पर रही है। तीन राज्यों के विधानसभा चुनावों और हाल ही में संपन्न हुए लोकसभा चुनावों में बेरोजगारी का मुद्दा प्रमुखता से उठा और बेरोजगारों को भत्ता देने सहित 21 लाख पद खाली होने के बावजूद नहीं भरे जाने और जीएसटी, नोटबंदी के कारण रोजगार के अवसर घटने को लेकर काफी विवाद रहा। सभी दलों ने अपने-अपने घोषणापत्रों में बेरोजगारी भत्ता देने का वादा किया था। वास्तव में बेरोजगारी भत्ता इसका कोई समाधान नहीं हो सकता, लेकिन रोजगार के अवसर पैदा करना सरकार का दायित्व भी होता है। दरअसल, सरकार आर्थिक सर्वेक्षण के माध्यम से स्पष्ट व सही आंकड़े प्राप्त करना चाहती है। आर्थिक सर्वेक्षण में सही आंकड़ा आना जरूरी है, क्योंकि इसी के आधार पर सरकार सामाजिक व आर्थिक विकास का रोडमैप तैयार करेगी।

जब सरकार के सामने वास्तविक आंकड़े होंगे तो लोगों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने, पानी, बिजली, स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवहन आदि सुविधाओं के विस्तार में सहायता मिल सकेगी। माना जाना चाहिए कि सर्वेक्षण के आंकड़े आते ही सरकारी स्तर पर विश्लेषण से लेकर उसके आधार पर आर्थिक विकास की व्यावहारिक योजनाओं पर अमल करना होगा ताकि लोगों के जीवन स्तर में सुधार हो और देश के प्रत्येक नागरिक को सम्मानजनक जीवन यापन करने के साधन उपलब्ध हो सकें।

● *दुर्गेश शर्मा, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश*

आखिर सजा

कठुआ बलात्कार कांड में पठानकोट की विशेष अदालत ने तीन को उम्र कैद और तीन पुलिसकर्मियों को पांच साल की सजा सुनाई है। वैसे वे सब मौत की सजा के हकदार कहे जा रहे थे। इसे अभी पूर्ण न्याय नहीं कहा जा सकता जब तक देश की अंतिम अदालत यानी सुप्रीम कोर्ट से इसकी पुष्टि नहीं हो जाती। वैसे तो देश में रोज ही बलात्कार की घटनाएं होतीं हैं मगर इस मामले में पहली बार एक वर्ग विशेष के लोग खुलकर हिंदू-मुसलमान का खेल खेलने लगे। पवित्र तिरंगे को इस वीभत्स अपराध के समर्थन में लहराया गया। इतना ही नहीं, जिन्हें न्याय के रखवाले कहा जाता है उनकी कौंसिल के लोगों द्वारा अदालत के भीतर बवाल मचाते हुए आरोप पत्र दाखिल होने से रोका गया। आखिर न्याय की राह में रोड़े अटकाने वालों को कब कठघरे में खड़ा किया जाएगा?

● *जंग बहादुर सिंह, गोलपहाड़ी, जमशेदपुर*

नशे से नाश

देश के विकास में युवा वर्ग का सबसे बड़ा योगदान होता है। स्वस्थ और तंदरुस्त युवा देश को विकास को रफ्तार दे सकते हैं लेकिन अफसोस की बात है कि आज भारत के कुछ युवा नशे के आदी होकर अपनी जिंदगी को नरक बना रहे हैं। नशा, नाश का दूसरा नाम है। जिसने भी नशे का दामन एक बार पकड़ लिया उसे नशा मौत के मुंह तक तो ले ही जाता है, साथ ही उसके घर- ारिवार का भी कई बार नाश कर देता है। नशा इंसान को हैवान भी बना देता है, हैवानियत के कारण नशेड़ी इंसान अपने परिवार के सदस्यों, यहां तक कि अपने बच्चों के साथ भी क्रूरता भरा व्यवहार करने से गुरेज नहीं करता है। मां-बाप अपने बच्चों को लाड़-प्यार से पाल कर उनके भविष्य के लिए सुनहरे सपने संजोते हैं लेकिन जब कोई बच्चा बचपन या जवानी की दहलीज पर पांव रखते ही नशे के दलदल में धंसना शुरू होकर अपनी जिंदगी बर्बाद करने लगता है तो मां-बाप के सपने उसी समय चकनाचूर हो जाते हैं।

नशे के कारण कितने ही घर बर्बाद हो गए और बहुत से नौजवान जवानी में ही कई बीमारियों के शिकार होकर मौत के मुंह में चले गए। जो लोग नशे के चंगुल में फंस चुके हैं या फंसने जा रहे हैं उन्हें एक बात याद रखनी चाहिए कि नशा नाश का दूसरा नाम है।

● *राजेश कुमार चौहान, जालंधर*

संचार को रफ्तार

दूरसंचार मंत्री रविशंकर प्रसाद ने कहा कि हमारा पहला लक्ष्य 100 दिन के भीतर देश में 5 जी का परीक्षण शुरू करना है और अगले साल से इस सेवा को सक्रिय करना है। 5 जी मोबाइल फोन वायरलेस सेवा की पांचवीं पीढ़ी है। पिछली पीढ़ी की तुलना में इसकी रफ्तार काफी अच्छी होगी। यह 2 जी, 3 जी और 4 जी की पूरक होगी। 5 जी टेक्नोलॉजी से इंटरनेट के उपयोगकर्ताओं को बेहतर कवरेज, डेटा की उच्च सघनता मिलेगी और मोबाइल उपकरणों की बैटरी भी कम खर्च होगी। मोबाइल तकनीककी पहली पीढ़ी यानी 1जी एनालॉग सेवा थी, जिसे सेल्यूलर फोन के माध्यम से उपलब्ध कराया गया था। दूसरी पीढ़ी यानी 2जी; डिजिटल तकनीक पर आधारित सेवा थी, जिसकी स्पैक्ट्रम क्षमता, सुरक्षा और लिखित संदेश सेवा काफी बेहतर थी। 3 जी तकनीक का लक्ष्य संचार सेवाओं को तेज गति और सुरक्षा प्रदान करना था। इसके बाद आई 4 जी तकनीक आईपी यानी इंटरनेट प्रोटोकॉल सुविधा से लैस है और इसकी औसत संचार गति एक जीबीपीएस है।

5 जी मोबाइल संचार तकनीक इससे भी विकसित और तीव्र गति वाली है। यह देश में डिजिटल क्रांति में अहम भूमिका निभाएगी, जिससे भारत के सामाजिक परिवर्तन का लक्ष्य तेजी से हासिल किया जा सकेगा।

● *मनीष कुमार, पटना*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com